निर्वचन के सिद्धान्त

'अथ निर्वचनम्' से निरुक्त के द्वितीय अध्याय का प्रारम्भ हुआ है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगा लेना चाहिए कि प्रथम अध्याय को बाद में लिखकर यास्क ने इसे भूमिका के रूप में जोड़ दिया है क्योंकि प्रथम अध्याय में किये गये निर्वचन का उल्लेख आगे के अध्यायों में अनेक स्थलों पर पूर्वमेव व्याख्यातः कहकर दिया गया है, जिससे एक बात तो स्पष्ट है ही कि उन-उन स्थलों से पूर्व ही आरम्भिक अध्याय लिखा जा चुका था। 'पृथिवी' जैसे शब्द की व्याख्या प्रथम अध्याय के अलावा और कहीं नहीं है।

यास्क प्रणीत निरुक्त निर्वचन- ग्रन्थ है। इसमें शब्दों की व्याख्या इस प्रकार से की गयी है कि शब्दों में सन्निहित धातु का पता लगे तथा उनके आधार पर ही शब्दार्थ निर्धारित हो जाय। धातु से शब्दार्थ साक्षात् रूप से भी पता चल सकता है अथवा अलंकारों की भी सहायता लेनी पड़ सकती है। यास्क ने दोनों मार्गों का अवलम्बन किया है। द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद में 'न तु एव न निर्ब्रूयात्' कहकर शास्त्रकार ने निर्वाचन की अनिवार्यता पर बल दिया है। निर्वचन का तात्पर्य है–व्युत्पत्ति के द्वारा अर्थ बतलाना। जैसे– 'राम' शब्द' की व्युत्पत्ति 'रम् + घञ् >अ' है परन्तु निर्वचन है- "रमन्ते योगिनो यस्मिन्"। स्पष्टतः निर्वाचन के क्रम में धातु के साथ अर्थ का भी ज्ञान सम्भव होता है। यास्क महोदय निर्वचन निमित्त तीन सिद्धान्तों को प्रमुखतः कहते हैं-

1. जब किसी शब्द में विद्यमान धातु का अर्थ वही रहे, जो उस शब्द का है। फिर स्वर अथवा बनावट सम्बन्धी कोई आपत्ति नहीं दिखलाई पड़े। साथ ही व्याकरणशास्त्र की प्रक्रिया के द्वारा उसकी बनावट सिद्ध हो सके तब ऐसे शब्दों का निर्वचन सामान्य प्रक्रिया द्वारा ही करना चाहिए। कहा गया है-"तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेन अन्वितौ स्याताम्, तथा तानि निर्ब्रूयात्"।

जैसे -धातु की व्युत्पत्ति √धा (धारण करना) से की गयी है। याग, पाक आदि का शब्दों का निर्वचन सामान्य प्रक्रिया से सम्भव है।

2. जब किसी शब्द में विद्यमान धातु का अर्थ शब्द से भिन्न दिखलाई पड़े अथवा शब्द का अर्थ रखने वाले धातु से उस शब्द की सिद्धि करने में व्याकरण बाधक बने, तब उस शब्द के विभिन्न रूपों की

तुलना धातु के विभिन्न रूपों से करनी चाहिए। यदि कहीं साम्य दिखाई दे, निर्वचन कर लिया जाय। कहा गया है-"अथान्वितेऽर्थे, अप्रादेशिके विकारे, अर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद् वृत्तिसामान्येन"। जैसे- राजा की व्युत्पत्ति राज् (शोभना) से की जाती है क्योंकि राजा भी राज्य में शोभते हैं। कभी-कभी शब्द में जो धातु दिखाई देता है, उसका अर्थ शब्द में नहीं होता है, जैसे 'हस्त' में √हस् (अनन्वित अर्थ)। कभी ऐसा भी होता है कि जिस धातु में उस शब्द का अर्थ रहता है, उस धातु से उक्त शब्द की व्युत्पत्ति करने में व्याकरण बाधक बनता है। जैसे– 'हस्त' में √हन् (अप्रादेशिक विकार)– इन स्थितियों में दोनों रूपों की तुलना आवश्यक है कि साम्य है अथवा नहीं, जैसे– √हन् से 'निघण्टु' बना क्योंकि 'हन्' धातु का कहीं-कहीं 'घ' भी होता है।

3. निर्वचन के तृतीय सिद्धान्त में यास्क ने कहा कि ऐसी समानता दिखाई नहीं पड़े तब स्वर अथवा व्यञ्जन की समानता देखकर भी निर्वचन करें। कहा गया है-"अविद्यमाने सामान्येऽपि अक्षरवर्णसामान्यत् निर्ब्रूयात्"। जैसे- शृङ्ग का निर्वचन √शम् (मारना) केवल 'श' की समानता पर है।

उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों में से प्रथम सिद्धान्त तो वैज्ञानिक है परन्तु बाद के दो सिद्धान्त अवैज्ञानिक प्रतीत होते हैं। यास्क का मानना है कि कोई भी ध्वनि किसी भी ध्वनि के रूप में परिवर्तित हो सकती है चाहे उनमें कोई स्वाभाविक सम्बन्ध रहे अथवा नहीं और यह तथ्य भाषा विज्ञान के सिद्धान्त के प्रतिकूल जाता है। कारण यह कि यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि कुछ निश्चित ध्वनियाँ, निश्चित रूप में निश्चित समय पर परिवर्तित होती हैं। वैसे यास्क के उक्त विचार के पीछे उनका धातुज-सिद्धान्त है क्योंकि सभी शब्दों का निर्वचन यदि नहीं हो तब यह सिद्धान्त खतरे में पड़ जाएगा। वैसे इस सन्दर्भ में कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। जैसे- आधुनिक भाषाशास्त्री सभी शब्दों को आख्यातज नहीं मानते हुए उनकी उत्पत्ति का इतिहास तलाशता है। उदाहरणस्वरूप- संस्कृत के किसी शब्द का निर्वचन करना हो तब उस शब्द की तुलना अवेस्ता, ग्रीक, गॉथिक, तोखारियन आदि भाषाओं में प्राप्य शब्दों से करते हुए प्राचीनतम भारोपीय मूल भाषा में उसकी सत्ता खोजी जाती है। भाषा-विज्ञान इस विषय पर विचार नहीं करता कि वह धातु के रूप में है अथवा नाम के रूप में है। परन्तु क्या यह काम सम्भव है पूर्णतः? ज्ञातव्य है कि भाषाओं की संख्या अनगिनत है तथा सभी भाषाओं की जानकारी उन तत्त्वों की जानकारी, जो उस भाषा को प्रभावित करते हैं- एक असम्भव

कार्य है। जरा सोचिए, जब वर्तमान युग में पूर्णतः निर्वचन सम्भव नहीं तो यास्क के युग की स्थिति कैसी होगी? स्पष्टतः निर्वचन के जन्मदाता यास्क ही हैं। स्कोड कहते हैं-"हम आश्चर्यचकित हैं कि ये कितने अच्छे एवं सच्चे निर्वचन हैं"।

यह बात मानी जा सकती है कि ध्वनि-नियमों की अनदेखी यास्क ने की है और सभी जगह वही सही नहीं है परन्तु कुछ स्थलों पर निर्वचन सम्बन्धी वैज्ञानिकता को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। जैसे-

(क) स्वर-विकार के विभिन्न रूपों से परिचय- गुणविकार– 'एव' की व्युत्पत्ति √इ से, 'वय' की व्युत्पत्ति √वी से। वृद्धि विकार 'आदितेय' की व्युत्पत्ति 'अदिति' से। सम्प्रसारण– 'पृथक्' की व्युत्पत्ति 'प्रथ' से। इत्यादि-इत्यादि।

(ख) सन्धि के नियमों से परिचय- अनुष्टुप् की व्याख्या 'अनु' पूर्वक √स्तुभ् से हुई है अर्थात् दन्त्य स्> मूर्धन्य ष्, क्योंकि पूर्व में उकार है। यहाँ पाणिनि कृत 'इण्कोः' सूत्र द्रष्टव्य है, जिसका अभिप्राय है कि इण् एवं कवर्ग के बाद सु का ष् हो जाता है। इस नियम से देखें तो 'स्तुभ्' के पूर्व में 'अनु' का 'उ' इण् के अन्तर्गत आता है। क्या यह सूक्ष्म दृष्टि का द्योतक नहीं?

अब कुछ और भी सिद्धान्त द्रष्टव्य हैं-

1. धातु के कुछ रूपों में आदि अक्षर ही शेष रहता है, अन्य सभी का लोप हो जाता है। जैसे प्र + √दा + क्त > त यहाँ 'प्र त् त' है अर्थात् 'दा' धातु का 'द्' ही शेष बचा है जो 'त्' के रूप में है।

2. आदि स्वर का लोप भी कहीं-कहीं देखा जाता है। जैसे-'अण्' धातु का गुण-वृद्धि से रहित स्थानों में 'स्तः सन्ति'। आदि स्वर-लोप भाषा विज्ञान में भी दिखलाई पड़ता है। जैसे अवगाह्य > वगाह्य, अपिनद्ध > पिनद्ध।

3. धातु के अन्तिम अक्षर का भी लोप भी कहीं-कहीं देखा जाता है। जैसे- 'गम्' धातु का गम् + क्त > त= गतः । गम् + कत्वा > त्वा = गत्वा।

4. उपधा का भी लोप कहीं-कहीं द्रष्टव्य है। जैसे- √गम् > जग्मतुः > जग्मुः – यहाँ गम् के अ का लोप हुआ।

5. ह्रस्व स्वर के बाद अनुनासिक-वर्ण रहने से दीर्घ स्वर होता है तथा उपधा में विकार देखा जाता है, जिसे अनुनासिक लोप कह सकते हैं। जैसे- राजन् > राजा, दण्डिन् > दण्डी

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भाषा के परिवर्तन में ये विकार सहायक हैं परन्तु अनियमित होने के कारण किस स्थान पर ये सहायक होंगे- कहना कठिन है। दुर्गाचार्य इन नियमों में से कुछ चुनकर निरुक्त का लक्षण करते हैं-

"वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्"।।

उपर्युक्त सिद्धान्त भाषा विज्ञान में भी मान्य हैं वैसे यास्क ने निर्वचन करने का प्रधान साधन व्याकरण-सम्मत धातु को माना है। जैसे–'जातवेदस्' शब्द का निर्वचन करने के क्रम में उन्होंने √विद् के विभिन्न अर्थों को आधार मानकर शब्द का छः प्रकार से निर्वचन कर डाला है।

उक्त विवेचन निर्वचन-सिद्धान्त-सम्बन्धी, झलक-मात्र है क्योंकि यास्क के निर्वचनों को विभाजित करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। उनके निर्वचनों का अध्ययन करने के पश्चात् भाषा वैज्ञानिक कुछ को पूर्णतः स्वीकार करते हैं, कुछ को ध्वनि की दृष्टि से स्वीकार करते हैं, कुछ को पूर्णतः अस्वीकार करते हैं, कुछ को गलत एवं कुछ को असम्भव भी मानते हैं।